SpS-7

The Views about Soul in Brihadaranyakaupanisad

"बृहदारण्यकोपनिषद्" में 'आत्मा' के प्रति विचारः

VISHAL BHARDWAJ
Junior Research Fellow,
Department of Sanskrit,
Guru Nanak Dev University,
Amritsar.

उपनि-ादों का मुख्य प्रतिपाद्य वि-ाय 'आत्मा' है। संहिता से लेकर आरण्यक पर्यन्त 'ब्रह्म' को 'आत्मा' से भिन्न रूप में प्रतिपादित किया गया है। परन्तु 'बृहदारण्यकोपनि-ाद्' में 'आत्मा' तथा 'ब्रह्म' को अभिन्न माना गया है। 'बृहदारण्यकोपनि-ाद्' के चतुर्थ अध्याय के चतुर्थ ब्राह्मण के एक मन्त्र में बताया गया है कि जिसमें पांच पञ्चजन तथा (अव्याकृतसंज्ञक) आकाश भी प्रति-िठत है, उस आत्मा को ही मैं अमृत ब्रह्म मानता हूँ। उस ब्रह्म को जानने वाला मैं अमृत ही हूँ।[1] एक अन्य स्थल पर भी कहा गया है, "ईश्वर माया से अनेक रूप प्रतीत होता है (शरीर रूपी रथ में जोड़े हुए) इसके (इन्द्रिय रूपी) घोड़े ृात तथा दस हैं। यह (परमेश्वर) ही हरि (इन्द्रिय रूपी अश्व) है, यही ृात, दश, अनेक तथा अनन्त है। वह यह ब्रह्म अपूर्व (कारणरहित), अनपर (कार्यरहित), अनन्तर (विजातीय द्रव्य से रहित) तथा अबाह्य है। यह आत्मा ही सबका अनुभव करने वाला ब्रह्म है"।[2]

वास्तव में इन दोनों के अभिन्न होने से 'आत्मा' के अतिरिक्त विश्व में अब और कोई सत्-पदार्थ ही नहीं रहा। अब यह तत्व पूर्ण है। 'आत्मा' ही सर्वव्यापी है तथा विश्व के सभी पदार्थ इसी के गर्भ में विलीन हो जाते हैं। इससे बहिर्भूत कुछ भी नहीं है। यही कारण है कि 'बृहदारण्यकोपनि-ाद्' में लिखा है, "वह यह आत्मा ब्रह्म है। वह विज्ञानमय, मनोमय, प्राणमय, चक्षुर्मय, श्रोत्रमय, पृथ्वीमय जलमय, वायुमय, आकाशमय, तेजोमय, अतेजोमय, काममय, अकाममय, क्रोधमय, धर्ममय, अर्धममय तथा सर्वमय है। जो कुछ इंदमय (प्रत्यक्ष) तथा अदोमय (परोक्ष) है, वह वही है।"[3] इससे यह स्प-ट है कि संसार के जितने स्थूल तथा सूक्ष्म पदार्थ हैं, सभी 'आत्मा' अथवा 'ब्रह्म' के ही रूप हैं। जितनी वस्तुएं संसार में हैं, सभी का सार 'आत्मा' ही है।

'आत्मा' के महत्व का प्रतिपादन करते हुए कहा गया है, "इस अनेकों अनर्थों से पूर्ण तथा विवेक-विज्ञान के विरोधी वि-ामृ ारीर में प्रवि-ट हुआ आत्मा जिस ब्राह्मण को प्राप्त तथा ज्ञात हो गया है, वही विश्वकृत् (कृतकृत्य) है। वही सबका कर्ता है, उसी का लोक है तथा स्वयं वही लोक भी है। हम इस ृारीर में रहते हुए ही यदि उसे जान लेते हैं (तो कृतार्थ हो गए) यदि उसे नहीं जाना तो बहुत हानि है। जो उसे जान लेते हैं, वे अमृत हो जाते हैं, परन्तु दूसरे लोग तो दुःख को ही प्राप्त होते हैं"।[4]

याज्ञवल्क्य-मैत्रेयी संवाद में याज्ञवल्क्य से मैत्रेयी ने कहा, "भगवन्! यदि यह धन से सम्पन्न सारी पृथ्वी मेरी हो जाए तो क्या मैं उससे अमर हो सकती हूँ? तब याज्ञवल्क्य ने कहा, 'नहीं, ऐसा नहीं हो सकता।'"[5] इस बात का समाधान सान्त्वनापूर्वक करते हुए याज्ञवल्यक्य ने कहा, "पति के प्रयोजन के लिए पति प्रिय नहीं होता, अपने ही प्रयोजन के लिए पति प्रिय होता है; स्त्री के प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिया नहीं होती, अपने ही प्रयोजन के लिए स्त्री प्रिया होती है; पुत्रों के प्रयोजन के लिए पुत्र प्रिय नहीं होते, अपने ही प्रयोजन के लिए पुत्र प्रिय होते हैं; यही स्थिति पशुओं, लोकों, वेदों, भूतों आदि के लिए होती है। अतः यह कहा जा सकता है कि सबके प्रयोजन के लिए सब प्रिय नहीं होते हैं, अपने ही प्रयोजन के लिए सब प्रिय होते हैं।"[6] "अतः अरी मैत्रेयि! आत्मा ही दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय तथा निदिध्यासन (ध्यान) करने योग्य है। हे मैत्रेयि! निश्चय ही आत्मा का दर्शन, श्रवण, मनन तथा विज्ञान हो जाने पर इन सब का ज्ञान हो जाता है।"[7]

'सब कुछ आत्मा ही है' इस तत्व का उपदेश देते हुए याज्ञवल्क्य कहते हैं, "ब्राह्मणजाति उसे परास्त कर देती है, जो ब्राह्मणजाति को आत्मा से भिन्न समझता है। क्षत्रिय जाति उसे परास्त कर देती है, जो क्षत्रियजाति को आत्मा से भिन्न समझता है। लोक उसे परास्त कर देते हैं, जो लोकों को आत्मा से भिन्न जानता है। देवता उसे परास्त कर देते हैं, जो देवताओं को आत्मा से भिन्न जानता है। भूत उसे परास्त कर देते हैं, जो आत्मा को भूतों से पृथक् समझता है। सब उसे परास्त कर देते हैं, जो सबको आत्मा से भिन्न जानता है। यह ब्राह्मणजाति, यह क्षत्रियजाति, ये लोक, ये देव, ये वेद, ये भूत तथा ये सब जो कुछ भी है, यह सब आत्मा ही है।"[8]

मैत्रेयी बोली, "श्रीमान् ने मुझे मोह को प्राप्त करा दिया है। मैं इसे विशे-ा रूप से नहीं समझती।" तब याज्ञवल्क्य ने कहा, "अरी मैत्रेयि! मैं मोह की बात नहीं कर रहा हूँ। अरी! यह आत्मा निश्चय ही अविनाशी तथा अनुच्छेद रूप धर्मवाला है।"[9] इस प्रकार अपने इस संवाद का उपसंहार करते हुए याज्ञवल्क्य जी ने कहा, "यह आत्मा अगृह्य है अर्थात् इसका ग्रहण नहीं किया जाता, (यह आत्मा) अशीर्य है अर्थात् इसका विनाश नहीं होता, असंग है, अर्थात् आसक्त नहीं होता, अबद्ध है अर्थात् यह व्यथित तथा क्षीण नहीं होता। हे मैत्रेयि! विज्ञाता को किस के द्वारा जानें? इस प्रकार तुझे उपदेश कर दिया गया। अरी मैत्रेयि! निश्चय जान, इतना ही अमृतत्व है।"[10]

अतः उपर्युक्त विश्ले-ाण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि 'बृहदारण्यकोपनि-ाद्' के अनुसार 'आत्मा' 'ब्रह्म' से अभिन्न है, अविनाशी, अनुच्छेद रूप है तथा यह 'आत्मा' दर्शनीय, श्रवणीय, मननीय तथा निदिध्यासन करने योग्य है। संसार में 'आत्मा' के अतिरिक्त कुछ भी नहीं है।

1. यस्मिन्पञ्च पञ्चजना आकाशश्च प्रति-ि्ठतः।
तमेव मन्य आत्मानं विद्वान् ब्रह्मामृतोऽमृतम्।।
बृहदारण्यकोपनि-ाद्ः सानुवाद ृांकरभा-यसहित,
मोतीलाल जालान (प्रकाशक), गीताप्रैस गोरखपुर,
सं 2025, पृ. सं. - 1086 (4, 4, 17)

2. रूपँ रूपं प्रतिरूपो बभूव तदस्य रूपं प्रतिचक्षणाय। इन्द्रो मायाभिः पुरुरूप ईयते युक्ता ह्यस्य हरयः ृाता दशेति। अयं वै हरयोऽयं वै दश च सहस्राणि बहूनि चानन्तानि च तदेतद्ब्रह्मपूर्वमनपरमनन्तरमबाह्ममयमात्मा ब्रह्म ।"
वही, पृ. सं. 612, (2, 5, 19)।

3. "स वा अमयात्मा ब्रह्म विज्ञानमयो मनोमयः प्राणमयश्चक्षुर्मयः श्रोत्रमयः पृथ्वीमय आपोमयो वायुमय आकाशमयस्तेजोमयो ऽतेजोमयः काममयो ऽकाममयः क्रोधमयो ऽक्रोधमयो ध र्ममयो ऽधर्ममयः सर्वमयस्तद् यदेतदिदम्मयो ऽदोमय इर्ति"
वही, पृ. सं. 1041, (4, 4, 5)

4- (i) यस्मानुवित्तः प्रतिबुद्ध आत्मास्मिन् संदेह्ये गहने प्रवि-टः।
स विश्वकृत् स हि सर्वस्य कर्ता तस्य लोकः स उ लोक एव।।
(ii) इहैव सन्तोऽथ विद्मस्तद्वयं न चेदवेदिर्महती विनि-टः।
ये तद्विदुरमृतास्ते भवन्त्यथेतरे दुःखमेवापियन्ति।।
वही, पृ. सं. 1080, (4, 4, 13-14)

5. सा होवाच मैत्रेयी यन्नु म इयं भगोः सर्वा पृथिवी वित्तेन पूर्णा स्यात् स्यां न्वहं तेनामृताऽहो 3 नेति नेति होवाच याज्ञवल्क्यो ॅ।
वही, पृ. सं. 1130 (4, 5, 3)

6. स होवाच न वा अरे पत्युः कामाय पतिः प्रियो भवत्यात्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति। न वा अरे जायायै कामाय जाया प्रिया भवत्यात्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवतिॅ न वा अरे सर्वस्य कामाय सर्वं प्रियं भवत्यात्मनस्तु कामाय सर्वं प्रियं भवतिॅ। वही, पृ. सं 1132 (4, 5, 6)

7. आत्मा वा अरे द्र-टव्यः श्रोतव्यो मन्तव्यो निदिध्यासितव्यो मैत्रेय्यात्मनि खल्वरे दृ-टे श्रुते मते विज्ञात इदँ सर्वं विदितम्।।
वही, पृ. सं. 1132, (4, 5, 6)

8. ब्रह्म तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनो ब्रह्म वेद क्षत्रं तं परादाद योऽन्यत्रात्मनः क्षत्रं वेद लोकास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो लोकान् वेद देवास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो देवान् वेद वेदास्तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो वेदान् वेद भूतानि तं परादुर्योऽन्यत्रात्मनो भूतानि वेद सर्वं तं परादाद् योऽन्यत्रात्मनः सर्वं वेदेदं ब्रह्मेदं क्षत्रमिमे लोका इमे देवा इमे वेदा इमामि भूतानीदँ सर्वं यदयमात्मा।।
वही, पृ. सं. 1134, (4, 5, 7)

9. सा होवाच मैत्रेय्यत्रैव मा भगवान् मोहान्तमापीपिन्न वा अहमिमं विजानामीति स होवाच न वा अरेऽहं मोहं ब्रवीम्यविनाशी वा अरेऽयमात्मानुच्छित्तिधर्मा।।
वही, पृ. सं. 1138, (4, 5, 14)

10. ॅ आत्मागृह्यो न हि गृह्यतेऽशीर्यो न हि ृीर्यतेऽसंगो न हि सज्यतेऽसितो न व्यथते न रि-यति विज्ञातारमरे केन विजानीयादित्युक्तानुशासनासि मैत्रेय्येतावदरे खल्वमृतत्वमिति होक्त्वा याज्ञवल्क्यो विजहार।।
वही, पृ. सं. 1140, (4, 5, 15)

Vimarsha Bharati